सत्यांश

उत्तम खेती, मध्यम बान

बेमौसम की बारिश, आँधी-तूफान और ओले गिरने के कारण लगभग तैयार फसलें बर्बाद हुई हैं, फलतः आत्महत्या तथा सदमे से बड़ी संख्या में किसानों की मौतें हो रही हैं। वैसे भी भारत में हर वर्ष दस हजार से अधिक किसानों की आत्महत्या से मौत होती है। यह स्थिति 1991 ई. की उदारीकरण नीति के बाद से लगातार बनी हुई है। महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, पंजाब, हरियाणा, गुजरात आदि राज्यों में किसानों द्वारा आत्महत्या की घटनाएँ सामने आई हैं। इससे वर्तमान किसानी जीवन की दुरावस्था का पता चल जाता है। पहले कभी कृषि को सर्वोत्तम कार्य माना जाता था - 'उत्तम खेती, मध्यम बान, निकृष्ट चाकरी, भीख निदान।' लेकिन आजकल खेती और खेतिहर का कार्य मजबूरी का काम बन चुका है। अब लोग नौकरी-व्यवसाय को ज्यादा तरजीह देते हैं। यों आज भी कृषि की महत्ता दर्शाने वाले अनेक जुमले प्रचलित हैं। जैसे, भारत एक कृषि प्रधान देश है, भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि है, सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योग 12 प्रतिशत है, 60 प्रतिशत लोगों के लिए यह अब भी रोजगार का साधन है, आदि-आदि। परंतु क्या कृषि का महत्त्व इतना ही है?

जीवन के लिए भोजन उपलब्ध कराने का माध्यम कृषि है। दुनिया के लोगों एवं जीव-जंतुओं की सर्वाधिक बुनियादी अनिवार्यता भोजन का यह आधार है। भोजन के बिना प्राणिमात्र का जीवन संभव नहीं और खेती-बाड़ी के बिना भोजन का समुचित प्रबंध असंभव है। इस प्रकार कृषि-कार्य व्यवसाय-पेशा-धंधा से अधिक जीवन का प्राणतत्त्व है। जो खेती करते है और जो खेती नहीं करते हैं, भोजन तो दोनों को चाहिए। इसलिए सुव्यवस्थित कृषि-कार्य जरूरी है। हालाँकि आधुनिक बाजारवादी, व्यावसायिक एवं यांत्रिक सभ्यता की ओर उत्तरोत्तर आरोहण के कारण जीवन के मूल्य दिनोंदिन तेजी से बदलते जा रहे हैं। अच्छे मिशनरी कार्य की बजाय किसी भी प्रकार अधिक से अधिक धन कमाकर सुविधा भोगने की चाहत बेतहाशा बढ़ी है। खेती जैसे मोटे काम में, जहाँ शरीर में मिट्टी लगानी पड़ती है, शारीरिक परिश्रम करना पड़ता है, तब जाकर फसल होती है और कई बार नहीं भी होती; शहरी-बाजारू भोग-विलासोन्मुख जीवन-पद्धति से परे रहकर यह घाटे का सौदा या कम-से-कम जुआ की अनिश्चितता में काम करने का साहस आसान नहीं है।

खेती में लागत मूल्य बढ़ते जा रहे हैं, जमीन की जोत छोटी होती जा रही है, कृषि-उत्पाद के क्रय-विक्रय के लिए समुचित बाजार-व्यवस्था का अभाव है, बाढ़ व सूखे की आशंका बनी रहती है, खेतिहर मजदूरों का पलायन शहरों की ओर बढ़ गया है, स्वयं कृषक परिवार भी गाँवों से शहरों की ओर जा रहे हैं, फलतः कृषि-कार्य दुर्गम होता जा रहा है। बढ़ती जनसंख्या का पेट भरने के लिए खाद्यान्य के पर्याप्त उत्पादन हेतु रासायनिक खादों, उर्वरकों, कीटनाशकों सहित अन्य अनेक दवाइयों का उपयोग धड़ल्ले से हुआ है, जिनसे पैदावार तात्कालिक रूप से बढ़ी है, परंतु दीर्घकालिक रूप से जमीन की उर्वरा-शक्ति क्षरित हुई है और खेती में लागत बहुत बढ़ गई है। विश्व की एक बड़ी आबादी आज भी भोजन की समस्या से जूझ रही है, पर यह समस्या खाद्यान्य की कमी के कारण उत्पन्न नहीं है, बल्कि समुचित वितरण की इच्छा-व्यवस्था के अभाव के कारण है। भारतीय खेती के साथ एक विडंबना यह भी है कि जिनके पास खेत हैं, उनके पास खेती की इच्छा और श्रम-बल का अभाव होता जा रहा है और जिनके पास इच्छा और श्रम-बल है, उनके पास खेत का अभाव है। हालाँकि खेती के प्रति सामान्यतः पहले जैसा आकर्षण नहीं है, फिर भी तमाम समस्याओं-चुनौतियों के बीच मनुष्य जीवन के लिए बुनियादी आवश्यकता के एकमात्र आपूर्तिकर्ता के रूप में कृषि की अपरिहार्यता स्वयंसिद्ध है। आखिर पैसों से खरीदकर भी तभी खाया जा सकता है, जब बाजार में पर्याप्त मात्रा में अन्न उपलब्ध हों। अतः प्राकृतिक व वैज्ञानिक रीति-नीति में तालमेल बिठाते हुए बृहद पैमाने पर सुव्यवस्थित सामूहिक-सार्वजनिक खेती का उपाय अख्तियार करना वर्तमान समय की जरूरत है।